श्री सूरदास जी

श्री सूरदास जी के विषय में श्री नाभा जी लिखते हैं-

सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।।
उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्‌भुत तुक धारी।।
प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी।।
विमल बुद्धि गुन और की जो यह गुन श्रवननि धरै।
सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।।

सूरदास जी उद्धव जी के अवतार हैं। उद्धव जी भगवान श्री कृष्ण के प्राण प्रिय सखा थे। भगवान ने उन्हें व्रज में भेजा। व्रज की रज से एक होकर उद्धव जी ने व्रज रस और व्रज की महिमा को जाना। वे कई महीने व्रज में रहे। भगवान कृष्ण की लीलाएँ उनके हृदय में विराजमान हो गईं। वहाँ से लौटने के बाद उद्धव जी के मन में प्रबल वासना पैदा हो गई कि मैंने व्रज में रह कर गोप, गोपी, ग्वाल-बाल, गैया, बछड़ा, यमुना जी और व्रज की लता पता को भी ठाकुर जी की कृपा से समझा, अब मैं व्रज के रस और व्रज की लीलाओं को गाऊँ। ठाकुर जी ने उनको हृदय से लगा कर कहा-'इसीलिए तुमको व्रज में भेजा था, शुकदेव जी तो इन लीलाओं को सूत्रात्मक रूप से कहेंगे, तुम सूरसागर के रूप में व्रज रस को प्रकट करना। इस रस को उद्वेलित करने का कार्य कलिकाल में तुम्हारे द्वारा होना है, इसलिए तुम सूरदास जी के रूप में प्रकट हो कर लीला करो'-यह भाव परम भक्त रीवा नरेश रघुराज सिंह जी ने राम रसिकावली ग्रंथ में प्रकट किया है।

सूरदास जी के साहित्य में व्रज के श्याम की बोलचाल, रहनी इत्यादि प्रत्यक्ष प्रकट है। इसे व्रज में जन्म लेने वारो ही समझ सकै। नाभा जी ने अपने छप्पय में पहले तो सूरदास जी की कविता की प्रशंसा की, फिर 'प्रतिबम्बित दिवि (दिव्य) दृष्टि हृदय हरि लीला भासी' कह कर यह बताया है कि प्राय: कवि कल्पना के राज्य में उड़ते हैं और कुछ लेखनी से लिखते हैं। कल्पना तो कल्पना ही है, आवश्यक नहीं है कि वह सत्य हो। लेकिन सूरदास जी का साहित्य उनकी कल्पना नहीं है। उनके हृदय में 'हरि लीला भासी।' सूरदास जी का एक भी अक्षर सामान्य कवि की कल्पना जैसा नहीं है। भागवत तथा अन्य पुराणों में जहां जहां श्री कृष्ण की चर्चा आई है, उन

सबको तो सूरदास जी ने अपने साहित्य में कहा ही है, क्वचिद् अन्यतोपि-जो चरित्र इन पुराणों में भी नहीं है वह भी सूरसाहित्य में है। कुछ लीलाएं ऐसी हैं जो ठाकुर जी ने उनके सामने प्रकट कर के दिखाई और उन्होंने लिखी। जैसे कालिय दमन प्रकरण में मूल भागवत में गेंद खेलने का वर्णन नहीं है पर सूरदास जी ने कंदुक लीला का वर्णन किया है। यह लीला ठाकुर जी ने उन्हें दिखाई, इसलिए उन्होंने वर्णन किया-यह समाधान नाभाजी ने-'हृदय हरि लीला भासी' के द्वारा किया है।

सूरदास जी ने शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार रस ही नहीं, हास्य, रौद्र और वीभत्स रस तक गाया है क्योंकि उनके ठाकुर रसरूप हैं-रसौ वै सः।

एक ग्रन्थ है-अष्टसखा भक्तमाल। उसमें आता है कि ठाकुर जी ने विचार किया कि श्री सूरदास जी के रूप में उद्धव जी प्रकट हों। अति कौतुकी जनार्दन करते कोई बहाना-एकांत निकुंज में श्री किशोरी जी के साथ ठाकुर जी विराजमान हैं। चर्चा यही है कि द्वापर चला गया, कलिकाल आ गया, अब तमस अधिक है, सब श्रुति विरोधी हैं। ये बेचारे यदि मेरी लीला से विमुख हो जाएंगे तो और अधिक क्लेश से युक्त होंगे। हम लोगों को ऐसा कोई उपाय करना चाहिए कि कलिकाल के जीवों को भी कोई सहारा मिले। श्री जी ने कहा-'प्यारे, मोकूं तो यही लगै कि जीव आपके लीला चरित्र से जब तक विमुख रहैगो, तब तक याकी विपत्ति को नास नहीं है सकेगो। यदि ये चरित्र सुनैगो तो आपके रूप, गुण, लीला और नाम में याको मन मीन फंस जावेगो। ऐसा कार्य वही कर सकै जो हमारी समग्र लीला को जानतो होय।' ठाकुर जी बोले-'प्यारी जू, ऐसे तो हमारे प्राण सखा उद्धव ही हैं। वे आपकी कृपा भी प्राप्त कर चुके हैं। वे ज्ञानी हैं, कुशल वक्ता भी हैं। वे धरती पर भेजे जाएं।'

इस प्रकार तैयारी चल रही थी और उसी समय भगवत् इच्छा से उद्धव जी निकुंज द्वार पर आ गए। युगल सरकार ने ललिता जी को द्वार पर खड़ा कर रखा था कि हमारी एकान्तिक चर्चा चल रही है, किसी को आने मत देना। प्रेमोन्मत्त, ठाकुर जी के लाड़ले उद्धव जी अंदर जाने लगे तो ललिता जी ने रोक दिया। उद्धव जी को महाविरह हो गया। वे उन्मत्त हो कर अंदर जाने लगे तो ललिता जी ने कहा-'तुम इतने बड़े ज्ञानवान हो कर ऐसा कार्य करते हो? यह उचित नहीं है।' उद्धव जी को रोष आ गया-'तुम युगल के दर्शन में बाधा उपस्थित कर रही हो, मैं शाप देता हूं-तुम कुछ काल यवन के घर में जा कर रहो।' ललिता जी स्तब्ध हो गई-'मैं तो उनकी ही आज्ञा का पालन कर रही थी, तुमने ज्ञानवान हो कर भी अंधे जैसा कार्य किया, तुम जन्मांध हो कर प्रकट होओ।' वास्तव में दोनों के हृदय में युगल ही तो लीला कर रहे थे।

अब उद्धव जी को लगा-ललिता जी तो आचार्या हैं, मेरे द्वारा ऐसा अपराध! 'ललिता जी, क्षमा करो।' ललिता जी को भी पश्चाताप हुआ-रोकना तो ठीक था, लेकिन मैंने शाप दे दिया। मेरे

द्वारा भक्त का तिरस्कार! दोनों ही दुखी थे। ठाकुर जी ने उद्धव जी से कहा–आपको मेरी लीला कथा का विस्तार करने सूरदास जी के रूप में जाना पड़ेगा। ललिता जी को किशोरी जी ने कहा–'आपको किसी माता के गर्भ में नहीं जाना पड़ेगा। आपका भाव और रस प्रभावित नहीं होगा। हमारा तुम्हारा एक क्षण का भी वियोग नहीं होगा।' इस प्रकार भूमिका तैयार हुई।

राजा मानसिंह की बहन जोधाबाई को पुष्पों की शय्या पर पांच वर्ष की एक बालिका क्रीड़ा करती हुई मिली। जोधाबाई गोद में ले कर उसे ले आई और पालन पोषण करने लगी। इस बात का बादशाह अकबर को पता नहीं था। यह बालिका निरन्तर भाव रस में रहती। आठ वर्ष की आयु में वह जोधाबाई की सिंगार पेटी खोलकर अपना नख शिख शृंगार करती और छत पर झरोखे में बैठ बाहर अपलक निहारती रहती।

एक दिन जोधाबाई ने पूछा–'बेटी, तू इतना सिंगार करके छत पर एकान्त में क्यों बैठती है?' उसने कहा–'हमारे प्रियतम गोचारण करके इसी समय लौटते हैं, उन्हें देखने जाती हूं। मुझे देखे बिना उनको चैन नहीं और उन्हें देखे बिना मुझे चैन नहीं।' 'कौन है तेरे प्रियतम?' पूछने पर बालिका कुछ बोली नहीं, उसके नेत्र सजल हो गए।

एक दिन जोधाबाई ने कहा–'बेटी, तू निश्चित ही कोई दिव्य कन्या है, तू मेरा दुख दूर कर दे। बादशाह मुझसे विवाह करके ले तो आया पर उसकी इतनी बेगमें हैं कि वह मुझसे स्नेह नहीं करता। एक दिन तू अपने हाथ से मुझे सजा दे।' ललिता जी ने उसे सजाया तो उनके स्पर्श से ही उसकी जर्जरता मिट गई और अद्‌भुत रूप लावण्य प्रकट हो गया। अब बादशाह ने उसे देखा तो आश्चर्य चकित हो गया–'ऐसा कायाकल्प तुमने कहां कराया।' जोधाबाई ने उसे कन्या की बात बताई। वह भी आखिर था तो यवन ही, उसके मन में वासना जाग गई–यह जोधाबाई की पुत्री तो है नहीं, मैं उससे विवाह कर लूं। तुरत उसके शरीर में भयंकर जलन शुरु हो गई, किसी इलाज से वह दाह नहीं जाए, दिन रात जलन होती थी। अंत में फकीरों को बुलाया। फकीरों ने कहा–'तुम्हारे द्वारा किसी हिंदु संत के प्रति अपराध हुआ है, कोई हिंदु फकीर ही उपचार कर सकता है।'

अकबर मथुरा में सूरदास जी का दर्शन कर चुका था और श्रद्धा रखता था। यह प्रसंग विस्तार से आगे आएगा। तानसेन से सलाह करके अकबर ने बीरबल को भेजा। वह अनुनय विनय करके सूरदास जी को ले आया। अकबर ने चरणों में प्रणाम किया–'हे सूरदास जी महाराज, आप ही हमारी व्याधि को नष्ट कर सकते हैं। यह किस पाप का फल है?' सूरदास जी मुस्कुराए–'यह महत् अवज्ञा का फल है।' अकबर ने आश्चर्य से कहा–'मैं तो संतों के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता हूं। मुझसे किसका अपराध बना है?' सूरदास जी ने कहा–'तुम्हारे घर में अयोनिजा कन्या के रूप में साक्षात् ललिता जी विराज रही हैं, तुमने उनके प्रति कुभाव किया, यही है महत् अपराध।'

अकबर बड़ा आश्चर्य चकित हुआ कि अभी तक तो मैंने ही उस कन्या को नहीं देखा, इन्हें कैसे पता चला? हो सकता है किसी ने बता दिया हो। उसने पूछा–'इस बात का क्या प्रमाण है कि वे ललिता जी हैं?' सूरदास जी बोले–'संतन की तो वाणी ही प्रमाण होय है, तुम्हें विश्वास करनो होय तो करो, नहीं तो मत करो।' अकबर ने चरण पकड़ कर कहा–'मैं अविश्वास नहीं कर रहा, मैं तो उनका परिचय जानना चाहता हूं।' तब सूरदास जी ने उनके स्वरूप का वर्णन किया और फिर कहा–'एक विशेष चिन्ह है जिसका बोध या तो उन्हें है, या मुझे है। एक बार ठाकुर जी ने अपनी मुरली अनकी दक्षिण जंघा पर पधराई थी जिसका निशान एक सुंदर तिल के रूप में बन गया। जोधाबाई परीक्षण करके देख ले–बांसुरी का चिन्ह जंघा पर बना हुआ है।' जोधाबाई ने देखा तो सचमुच जैसा सूरदास जी ने बताया था वैसा ही चिन्ह बना हुआ था। अकबर का मन हुआ कि ललिता जी के दर्शन करूं। उसने आज्ञा दी–'शाहजादी साहिबा को दरबार में लाया जाए।' उस समय वे नौ वर्ष की थी। दरबार में उन्होंने किसी को प्रणाम नहीं किया। उनकी अंग कांति से सारी सभा आलोकित हो उठी। अकबर सहित सब उठ कर खड़े हो गए। उन्होंने पूछा–'मुझे दरबार में किस लिए प्रस्तुत किया गया है?' अकबर के विनय पूर्वक कहा–'शाहजादी, हमने तुम्हें तकलीफ इसलिए दी कि बाबा ने तुम्हारा परिचय दिया है।'

'कौन है बाबा?'

सूरदास जी ने प्रणाम करके कहा–'ललिते तोहिं बूझत शाहजहां,' अर्थात् शहंशाह अकबर तुम्हें जानना चाहता है।

कन्या ने कहा–'उद्धव, तजि श्याम तुम आए कहाँ?' इतना कह कर 'हे कृष्ण' कहते हुए योगाग्नि में अपने को भस्म कर लिया।

दोनों का परिचय मिल चुका था, अकबर की सभा सन्न रह गई। सूरदास जी रोने लगे–'तुम तो चली गई, पर मुझे अभी रहना होगा।' वे १०५ वर्ष तक धरा धाम पर विराजे।

एक शंका हो सकती है कि उस समय स्वामी हरिदास जी के रूप में ललिता जी ने अवतार लिया था, वे व्रज में विराज रहे थे, फिर यह दूसरा रूप कैसे संभव है? इसका समाधान यह है कि मुक्तात्मा में ठाकुर जी जैसी ही सामर्थ्य आ जाती है। वह एक ही नहीं, अनेक रूप धारण कर सकता है। यहां तक वर्णन आया है कि किसी को गोलोक की प्राप्ति हो जाती है और युगल सरकार झूला झूलना चाहते हैं तो वही झूला भी बन जाता है, क्योंकि यहां पंच भौतिक पदार्थ तो कोई है नहीं। ये रसिक मुक्तात्मा भगवान की शय्या, वसन, विटप, पुष्प, झूला और झुलाने वाले भी बन जाते हैं।

इसके बाद अकबर का जीवन बिलकुल बदल गया। उसकी पीड़ा शांत हो गई थी। अब तो वह पूजा गृह में बैठने लगा और वहां उसने संतों की छवि पधरा रखी थी, जबकि इस्लाम में बुतपरस्ती की बड़ी निन्दा की गई है।

श्री सूरदास जी का जन्म विक्रम संवत् १५३५ में वैशाख पंचमी, मंगलवार को सीही ग्राम में हुआ। यह वल्लभगढ़ के निकट है। कुछ लोग रुनुकता को जन्म भूमि मानते हैं, पर वहां वे रहे थे, जन्म तो सीही में हुआ था। इनके पिताजी का नाम था प० रामदास सारस्वत। वे बहुत गरीब थे। वास्तव में देखें तो धन की अधिकता ब्राह्मण को धर्म-कर्म, शौचाचार इत्यादि ब्राह्मणोचित कार्यों से च्युत कर देती है। भगवत्कृपा से भगवत् प्राप्ति के लिए ही अकिंचनता प्राप्त होती है। रामदास जी पढ़े लिखे थे, पर उनकी पुरोहिताई नहीं चलती थी। कभी कभार सत्यनारायण कथा बांचने का काम मिल जाता तो जो थोड़ी बहुत दक्षिणा मिलती उसीसे बड़ी मुश्किल से गृहस्थी चलती थी। पहले तो गरीबी, फिर संतान न होने का दुख और फिर प्रथम पुत्र हुआ भी तो जन्मान्ध। कच्चे छप्पर के घर में रहते थे। फिर और संतानें हुई, तो इतना संतोष हुआ कि यह बालक संस्कारी है और इसके कारण कोख खुल गई, अब वंश तो चलेगा। किन्तु जन्मान्ध होने के कारण सूरदास जी को माता पिता से उपेक्षा प्राप्त हुई। यह उपेक्षा भी भगवान की कृपा ही थी, क्योंकि माता पिता की उदासीनता श्री कृष्ण की ओर बढ़ने में सहायक सिद्ध हो गई। यदि प्रेम मिलता तो ममता हो जाती। इन्होंने निश्चय कर लिया कि एक भगवान को छोड़ कर मेरा अपना कोई नहीं है। पांच वर्ष की आयु से पहले ही वे भजन में लग गए।

जैसे ही उनका छठे वर्ष में प्रवेश हुआ, एक विलक्षण घटना घट गई। एक क्षत्रिय जमींदार को रामदास जी की गरीबी पर तरस आ गया। उसने सत्यनारायण की कथा करा कर पर्याप्त अन्न, वस्त्र के साथ दो सोने की मोहरें भी दीं। जैसे रंक को खजाना मिल गया। रामदास जी अनेक प्रकार के मनोरथ करने लगे-अब तो ठाठ से खाएंगे और भजन करेंगे। दोनो मोहरें कपड़े में लपेट कर छप्पर में खोंस दी गई। एक चूहा उन मोहरों को अपने बिल में ले गया। सवेरे उन मोहरों को बाजार में बेचने के लिए टटोला गया तो मोहरें गायब थीं। अब तो सब विलाप करने लगे। तब सूरदास जी ने कहा-'पिताजी, मोहरें खो गई तो आप इतना रो रहे हैं और बिना भजन के जीवन जा रहा है, उसके लिए नहीं रो रहे। भगवान ने भजन के लिए ही गरीबी दी है, अच्छा हुआ धन चला गया, अब प्रेम से भजन करो, भगवान मंगल करेंगे। वे विश्वम्भर हैं, पहले भी भरण पोषण कर रहे थे, आगे भी करेंगे।'

पिताजी को तो ऐसा लगा जैसे जले पर नमक छिड़क दिया गया हो-'बड़ा भारी ज्ञानी बनता है, तेरे पैर पड़े हैं तब से हमारी गरीबी बढ़ती ही चला गई है। तू तो अभागा है, तू करता ही क्या है? जीवन भर तुम्हें खिलाना पड़ेगा।'

सूरदास जी ने कहा–'पिताजी आप उन मोहरों के पीछे मुझसे इतने कठोर शब्द बोल रहे हैं। मैं बता सकता हूं कि मोहरे कहां हैं, पर शर्त यह है कि बताने के बाद मैं घर में नहीं रहूंगा। आप लोगों को अभिमान है कि इस अंधे का भरण पोषण हम कर रहे हैं, मैं संसार के किसी प्राणी के सहारे नहीं हूं, मैं तो विश्वम्भर के सहारे हूं।' भगवान की माया ऐसी कि माता पिता राजी हो गए। सूरदास जी ने पूरी बात बता दी–'इस दिशा में इतनी दूर जाओ, वहां इतना खोदो तो मोहरें मिल जाएंगी।'

मोहरें मिल गई तो घर में प्रसन्नता छा गई, किंतु सूरदास जी जैसे बैठे थे, वैसे ही उठ कर जाने लगे। अब तो माता पिता रोने लगे। सूरदास जी ने कहा–'हम बिलकुल दुखी हो कर नहीं जा रहे हैं। हम तो जानते हैं अपने प्यारे की लीला। अब तुम्हारी दरिद्रता के दिन चले गए। सब सुखी, सब प्रसन्न रहो। अब हम अपने ठाकुर के सहारे रहेंगे।'

पांच वर्ष की आयु में श्री ध्रुव जी ने सतयुग में गृह त्याग किया था। सूरदास जी ने पांच वर्ष की आयु में कलिकाल में गृह त्याग किया। युग को देखते हुए सूरदास जी के गृह त्याग की महिमा बहुत बड़ी है। देखिए, वैराग्य के पात्र में ही ज्ञान और प्रेम टिकता है। भक्ति महारानी वृंदावन पधारीं, किंतु रो रही थी क्योंकि उसके पुत्र ज्ञान–वैराग्य जर्जर हो रहे थे। इसका मतलब है कि कोई साधक अपने हृदय वृंदावन में भक्ति को कथंचित स्थापित भी कर ले, किंतु यदि ज्ञान–वैराग्य पुष्ट नहीं है तो उसके हृदय में रहते हुए भी भक्ति रोती रहेगी और कहेगी–यह स्थान छोड़ कर मैं तो परदेश चली जाऊंगी। लेकिन, ऐसा ज्ञान और वैराग्य भी हमें नहीं चाहिए जिसके आने से भक्ति चली जाए। इसीलिए कहते हैं ज्ञान कर्मादि अनावृतं–ऐसी भक्ति चाहिए जिसमें ज्ञान और वैराग्य अंग बन कर विराजमान हों, उसे आवृत्त न कर लें। और भक्ति नाची कब–

भक्ति सुतौ तौ तरुणो गृहीत्वा प्रेमैक रूपा सहसा विरासीत्।
श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ति।।

भगवन्नाम का संकीर्तन करते हुए भक्ति महारानी प्रकट हुई। इसलिए महात्माओं के चरित्रों में हम वैराग्य पूर्ण रहनी देखते हैं। वर्तमान काल के संतों में गिरिराज वाले बाबा संत प॰ श्री गया प्रसाद जी की अद्भुत वैराग्यपूर्ण रहनी है। उनका ही प्रतिरूप हम ठाकुर दास जी बाबा को मानते हैं। अपरिग्रह की चरम सीमा! ज्ञान वैराग्य के बिना उस निष्ठा से भजन संभव नहीं है जिस निष्ठा से होना चाहिए।

हम शास्त्रों के अध्ययन का सर्वथा निषेध नहीं कर रहे, किंतु प्रेमी भक्त के लिए बहुत अधिक पढ़ने लिखने की भी आवश्यकता नहीं है। उसके लिए इतना ही ज्ञान र्प्याप्त है–

और कोऊ समझो या न समझो हमको इतनी समझ भली है।
ठाकुर नन्द किशोर हमारे, ठकुराइन वृषभानु लली है।

और इनकी प्राप्ति में जो बाधक हैं-तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। बस वैराग्य यही है कि युगल की प्राप्ति में जो बाधक तत्व हैं, उनसे चित्त वृत्ति को हटा लेना। सूरदास जी की आयु के छः वर्ष भी पूरे नहीं हुए थे और कोई मार्ग दिखाने वाला भी नहीं था, लेकिन सूरदास जी चार कोस पैदल चले और एक सरोवर के पास पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ भगवत् स्मरण करने लगे। सायंकाल के समय एक धनाढ्य ब्राह्मण अपनी गायों को खोजता हुआ वहां आया। वह जोर जोर से आवाज लगा रहा था-'भैया, मेरी दस गाएं खो गई हैं, यदि कोई बता देगा तो उनमें से दो गाय मैं बताने वाले को दे दूंगा।' सूरदास जी को दया आ गई-'भैया, गैया तो तू दस की दस अपने पास रख, लेकिन तू ज्यादा दुखी है तो मैं बताऊँ-यहां से अमुक दिशा में एक कोस दूरी पर अमुक व्यक्ति की घुड़साल में तेरी दसों गैया बंधी हुई हैं।' आखिर तो वे उद्धव जी ही हैं, ज्ञान कहां जाएगा?

ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गया, इस छोटे से बालक को दिखाई भी नहीं देता और इसे कैसे पता चला? सचमुच उसे गाएं मिल भी गईं। वह दो गाएं उन्हें देने लगा तो उन्होंने कहा-'भैया, हम गैया पालबे नहीं, भजन करबे आए हैं। हम तो ठाकुर जी के सहारे हैं।' उनके त्याग-वैराग्य से ब्राह्मण बहुत प्रभावित हुआ और उसने उनके लिए बड़ी सुंदर पर्णकुटी बनवा दी। चारों ओर बाड़ लगा कर, वृक्ष आदि लगा कर आश्रम जैसा बना दिया और बड़े श्रद्धा तथा वात्सल्य भाव से उनकी देखभाल करने लगा। उनके लिए दो ब्राह्मण सेवक रख दिए और कहा-'तुम वेतन लो, ये हमारे गुरु महाराज हैं, इनकी सेवा करो। इन्हें कोई कष्ट नहीं होना चाहिए।' देखिए, एक वृद्ध ब्राह्मण ने छः वर्ष के बालक को गुरु स्वीकार किया।

सूरदास जी का समय आनन्द से व्यतीत होने लगा। पढ़ने लिखने तो कभी गए नहीं, पर जन्मजात कवित्त शक्ति थी, वे स्वयं पद रचना कर गायन करते। उनके पदों में ज्ञान-वैराग्य और भोगों की असारता का ही विशेष निरूपण कियाा जाता। इस प्रकार बारह वर्ष वहां रहे। उनके सैंकड़ों शिष्य हो गए जो उन्हें गुरु मान कर भजन में लग गए। अब लोगों का तांता लगा रहता। कुछ लोग इस प्रकार के प्रश्न ले कर भी आते-बाबा, हमारी भैंस खो गई है? बताओ कहां है। बाबा, हमारे छोरा होयगो कि नहीं? बाबा मेरी छोरी को ब्याह कब होयगो? सूरदास जी के मन में विचार आया-आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास। इसी के लिए घर छोड़ा था क्या? मैं दूसरों को ज्ञान-वैराग्य का उपदेश कर रहा हूं और स्वयं मेरी दशा क्या हो रही है?

सूरदास जी अर्धरात्रि को भरापुरा आश्रम छोड़ कर निकल गए और व्रज मण्डल में आ गए। गंगा जी जब पर्वतों से निकलती है तो बड़ी बड़ी शिलाओं को चूर चूर कर आगे बढ़ती है। फिर गंगा सागर में यह पहचान करना मुश्किल हो जाता है कि गंगा कौन सी है और सागर कौन सा है। इसी प्रकार प्रेमी भक्त अपने प्रेमास्पद की ओर बढ़ता है तो बड़ी बड़ी विघ्न बाधाओं को रौंदता हुआ चलता है और एक दिन अपने प्रेमास्पद से एक हो जाता है। सूरदास जी केवल शरीर पर एक वस्त्र धारण किए हुए प्रतिष्ठा को सूकरी विष्ठा के समान त्याग कर चल पड़े।

इस समय की एक घटना बिल्व मंगल जी की घटना से मिलती जुलती है। नाभा जी के मूल छप्पय छंद से इसका उल्लेख नहीं है, पर कहीं कहीं वर्णन आता है कि सूरदास जी की लाठी पकड़ कर ठाकुर जी चल रहे थे तो धीरे धीरे सूरदास जी ने उनका हाथ पकड़ लिया। ठाकुर जी ने कहा–'बाबा, तू अपनो लकुट ही पकड़, हमारो हाथ काय कूं पकड़ रह्यो है?' सूरदास जी ने कहा–'अंधे की लाठी पकड़बे के ताईं तो मेरो गोपाल ही आय सकै, दूसरो कोई नाय आय सकै।' वे हाथ छुड़ाने लगे, तब सूरदास जी ने कहा–

बांह छुड़ाए जात हो, निरबल जान के मोहि।
हृदय ते जब जाओगे, सबल बदौंगो तोहि।

किंतु वास्तव में यह घटना बिल्वमंगल जी से संबद्ध है, सूरदास जी से नहीं, क्योंकि पांच वर्ष की आयु में वे चार कोस चल कर पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गए और ब्राह्मण की गाय का पता बता दिया। जो अपनी दिव्य दृष्टि से इतना देख सकते हैं, उनकी लाठी पकड़ने की किसी को क्या जरूरत!

सूरदास जी वहां से चल कर मथुरा पधारे। विश्राम घाट पर कुछ समय रहे। मथुरा छोड़ने का कारण यही था कि उनकी प्रसिद्धि तो फैल ही चुकी थी, तमाम व्रजवासी मथुरा आ कर भी उनसे शगुन पूछने लगे। चलते चलते वे रुनकता में गऊघाट पर पहुंचे। वहां भी अनेक लोगों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया और वे स्वामी जी कहलाने लगे। सूरदास जी विचार करते कि मैं तो किसी का शिष्य बना नहीं और गुरु अनेक लोगों का बन गया। मेरा ही कोई मार्ग दर्शक नहीं है तो इन लोगों को तो मैं गड्ढे में ही डालूंगा, इसलिए मुझे विधिवत् दीक्षा ले कर उपासना करनी चाहिए, तब इन लोगों से कहना चाहिए कि तुम लोग भी इस मार्ग पर चलो। पर मैं भला कहां जाऊंगा गुरु को ढूंढने? किंतु मेरे ठाकुर तो इतने दयालु हैं–कृष्णं वन्दे जगद्गुरुं–वे जब चाहेंगे तो स्वयं ही गुरु रूप धारण करके मेरे निकट आ जाएंगे। सचमुच एक दिन भगवान के वैश्वानरावतार, साक्षात् भगवत् स्वरूप वल्लभाचार्य जी स्वयं चल कर वहां पधारे। महाप्रभु जी स्वयं पैदल चलते थे

और उनका 'छकरा भगत' एक बैलगाड़ी जितना सामान ले कर साथ चलता था। छकरा भगत ठाकुर जी के सिंहासन को सर पर विराजमान कर लेते और ग्रंथों को पीठ पर लाद लेते। ठाकुर जी के अमनिया भंडार की वस्तुओं को सामने लाद लेते और अन्य वस्तुएं हाथ में ले लेते। बस इतना था कि उनकी खुराक बहुत अच्छी थी, पर आचार्य चरण के आश्रित भक्त को खाने पीने की क्या कमी! आनन्द से खाते और सेवा करते। महाप्रभु स० १५६७ में गऊघाट पर आए। वे प्रयाग से चल कर आ रहे थे। छकरा भगत के अलावा अन्य परिकर भी थे। वे सब यमुना किनारे किनारे पैदल चल कर आ रहे थे। वहां पहुंच कर यमुना स्नान और संध्या वंदन कर किया। ठाकुर जी के भोग की तैयारी हो रही थी। वहां के लोगों ने सूरदास जी का सुयश महाप्रभु जी को सुनाया।

इधर सुबह से ही सूरदास जी को मंगल शकुन हो रहे थे और हृदय में आनन्द का साम्राज्य छा गया था। उन्हें जब महाप्रभु जी के आने का समाचार मिला तो उन्होंने अपने अन्तर्यामी से पूछा-'कहो, तुम ही आए हो न?' ठाकुर जी ने हामी भर दी। सूरदास जी ने फिर यमुना स्नान किया और गीले वस्त्रों में ही बहुत व्याकुल हृदय से उनके पास गए। रज में लोट कर साष्टांग दण्डवत् किया। महाप्रभु जी ने कहा-'सूरदास जी, आओ, विराजो। हमने सुना है कि आप ठाकुर जी के बड़े लाड़ले हैं और आपको सहज कवित्त शक्ति भी प्राप्त है। कुछ सुनाओ।' सूरदास जी ने पहला पद गाया-हौं हरि सब पतितन को नायक। को कर सकै बराबरी मेरी, और नहीं कोऊ लायक....

फिर दूसरा सुनाया-हरि हौं सब पतितन को टीको....

महाप्रभु जी हंसे, बोले-और सुनाओ।

सूरदास जी ने गाया-मो सम कौन कुटिल खल कामी। जेहि तन दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमक हरामी....

इस प्रकार के और भी पद सुनने के बाद महाप्रभु जी बोले-'सूरदास जी, आप तो सूर हो, काहे को घिघियाओ? तुम दीन हीन क्यों बन रहे हो, तुम तो लीला का गायन करो।' सूरदास जी ने चरण पकड़ लिए और कहा-'लीला की स्फुरणा ही नहीं तो गायन कैसे करूं? आप कृपा करो तो लीला रस की स्फूर्ति अवश्य हो जाएगी।'

आचार्यचरण ने कहा-'तुम पुनः यमुना स्नान करके मेरे पास आओ।' फिर कृपा पूर्वक तिलक धारण कराया, तुलसी की माला धारण कराई और अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा दे कर ब्रह्म संबन्ध कराया। सूरदास जी का दूसरा जन्म हो गया। उन्होंने अपने शिष्यों से भी कहा-'अब यहां के आगे आचार्यचरण का आश्रय लो। जो मुझे तार सकते हैं, वे ही तुम्हें तारेंगे।'

महाप्रभु ने सूरदास जी को दशम स्कन्ध सुनाया, फिर सम्पूर्ण भागवत की सूची सुनाई। फिर सुबोधनी जी के भी कुछ रहस्य समझाए। मात्र तीन दिन में यह सब कुछ बताया। यह सामान्य

जीव के लिए संभव नहीं है पर यहां तो ठाकुर जी के स्वरूप आचार्य चरण थे और उद्धव जी के स्वरूप सूरदास जी थे। सब कुछ बताने के बाद महाप्रभु ने पूछा–'अब तुमको क्या दीख रहा है?' सूरदास जी बोले–'हे आचार्य चरण, आपकी अंक में नील सरोरुह श्याम एक लाला बैठ्यो भयो है और मुसकुरा करके किलकारी भर रह्यो है।'

'अच्छो! लाला के दरशन ह्वै रहे हैं, अब आगे क्या दीख रह्यो है?'

'प्रभो, अब एक नई लीला आरंभ ह्वै रही है। नन्दोत्सव होय रह्यो है, यशोदा जी के अंक में लाला विराज रह्यो है।'

'दरशन ह्वै रहे हैं?'

'हां, ह्वै रहे हैं।'

'बताओ, अब क्या दीख रहा है?'

सूरदास जी ने गाया–

ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी।
सुनि आनन्दे लोग गोकुल गनत गुनी।।

इस लम्बे पद में सूरदास जी ने नन्दोत्सव का बहुत विस्तार से वर्णन किया। अभी तक तो कुछ प्रयत्न करके रचना करते थे, अब तो सहज ही वाणी प्रकट हो गई। महाप्रभु जी के अश्रुधार बह चली, जितने लोग वहां बैठे थे, सब सूर सुधा सिंधु में डूब गए। महाप्रभु जी ने पूछा–'सूरदास जी, या समय आपकी स्थिति कहां है?'

'मैं नन्द महल में एक खंभा के सहारे चिपको भयो ठाढो हूं और सब अपनी आंखन ते देख के वर्णन कर रह्यो हूं।'

'बस, अब अष्टयाम लीलाओं का दर्शन तुम्हें निरन्तर आपने चित्त में होता रहेगा।'

यह है आचार्य कृपा। अपने साधन से किसी इमारत की ऊंची मंजिल पर पहुंचना सीढ़ी से चढ़ कर जाने के समान है और गुरु कृपा से पहुंचना लिफ्ट से जाने के समान है। महाप्रभु जी ने कहा–'सूरदास जी, अब आपका नन्दालय में प्रवेश हो गया है, और आपकी क्या इच्छा है?'

सूरदास जी ने कहा–'अब तो मेरी सब इच्छाएं आपको समर्पित हैं। मैं सब विधि आपका हूं, आप जैसे, जो चाहे करें।' महाप्रभु जी उनको अपने साथ गोकुल ले आए। वहां सूरदास जी साष्टांग दण्डवत् कर रज में लोटने लगे। उनको अनेक लीलाएं स्फुरित होने लगी और वे भाव विह्वल हो गए। फिर महाप्रभु जी ने पूछा–'अब क्या अनुभव हो रहा है?' तब सूरदास जी ने उन लीलाओं का वर्णन कया–

शोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत रेणु तन मंडित मुख दधि लेप किए।।
चारु कपोल लोल लोचन छवि गोरोचन को तिलक दिए।
लट लटकन मनोमत्त मधुप गण मादक मधुहिं पिए।।
कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहि सुख का सत कलप जिए।।

झांकी का यह वर्णन कल्पना से नहीं था, जो देख रहे हैं, वही कह रहे हैं। महाप्रभु जी ने विह्वल हो कर पूछा–'सूरदास जी, आपको और कुछ दीख रहा है क्या?' आपने फिर गाया–

प्रथम करी हरि माखन चोरी।
ग्वालिन मन इच्छा पूरन करि आप भए व्रज खोरी।।
मन में यहै विचार करत हरि व्रज घर घर सब जाऊं।
गोकुल जन्म लियो सुख कारन सबके माखन खाऊं।।
बाल रूप जसुमति मोहे जाने गोपिन मिल सुख भोग।
सूरदास यों कहत प्रेम सों ये मेरे ब्रज लोग।।

महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें गोकुल में नवनीत प्रिय लालजी का कीर्तनिया नियुक्त कर दिया। उन्हें अहर्निश लीला स्फुरित होती। मंगला से ले कर शयन तक जो भी लीलाएं स्फुरित होती उनका गायन करते। कुछ काल के पश्चात् महाप्रभु जी ने उन्हें जतीपुरा आने की आज्ञा दी। वहां श्रीनाथ जी का दर्शन करा कर कहा–'अब इनको कुछ सुनाओ।'

आपने सुनाया–

अब हौं नाच्यो बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिर चोलना कंठ की विषय की माल।।
महामोह के नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भ्रम भूल्यो मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल।।
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल।।
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहीं काल।

सूरदास की सबै अविद्या दूर करो नन्दलाल।।

गद्गद् कंठ और अश्रुपूरित नेत्रों से जब सूरदास जी ने यह पद गाया तो महाप्रभु जी ने हृदय से लगाते हुए कहा–'सूरदास जी, काहे को इतने दीन हीन बनों, आपकी अविद्या तो श्री जी ने पहले ही हर ली है। हमें तो यह समझ में आय रही है कि तुम अविद्याग्रस्त जीव के प्रतनिधि बन कर श्री नाथ जी सों प्रार्थना करो हो।'

अब श्री नाथ जी की अष्टयाम सेवा में नियुक्त होने के बाद उन्होंने चन्द्र सरोवर के समीप पारासौली को अपने निवास के लिए स्वीकार किया क्योंकि उस स्थल पर सारस्वत कल्प में महारास हुआ था। वहां वे तिहत्तर वर्ष रहे। यह महान सिद्ध स्थली है, क्योंकि यहां रह कर उन्होंने तिहत्तर वर्ष भजन किया। वर्तमान में भी उनकी भजन कुटी संरक्षित है, वहां सूरश्याम गोशाला की भी स्थापना हुई है।

सूरदास जी नित्य चन्द्र सरोवर में स्नान करके सीधे श्री नाथ जी के मंदिर पहुंचते और मंगला में पद गायन करते। फिर राजभोग तक विराजते। फिर पारासौली लौट कर भजन ध्यान करके पुन: उत्थापन के समय चले जाते और ग्वाल आरती में सम्मिलित होते। वल्लभ कुल की यह प्रथा है कि ठाकुर जी को शयन जल्दी करा दिया जाता है। भाव यह है कि ठाकुर जी गैया चरा कर आए हैं, थके हुए हैं, उछल कर यशोदा मैया की गोद में चढ़ गए हैं और कुछ खा पी कर उनींदे से हो रहे हैं।

एक बार सूरदास जी ने पाया कि आन्योर गांव में कुछ लोग चौसर खेल रहे हैं। उन्हें बहुत कष्ट हुआ कि श्री नाथ जी की ध्वजा के नीचे रह कर भी ये विमुख हैं। वे पासे फेंकते हुए कह रहे थे-ये सत्रह! ये पौ बारह! सूरदास जी ने उन्हें समझाया बुझाया और यह पद गाया–

मन तू समझ सोच विचार।
भक्ति बिन भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकार।।
साधु संगति डारि पासा फेरि रसना सार।
दाव अबके पर्‍यो पूरौ उतर परली पर।।
छांड़ि सत्रह (पुराण) सुनि अठारह (भागवत) पंच ही (पांच इन्द्रियां) को मार।
दूरि ते तजि तीन काने (तीन गुण) चमकि चोक विचार।।
काम क्रोध जंजाल भूल्यो ठग्यो ठगिनि नार।
सूर हरि के पद भजन बिन चल्यौ दोऊ कर झार।।

महात्माओं की वाणी में तप का जल और हृदय में विराजे भगवत् चरण कमल मकरन्द की सुगंध होती है। यह सुगंध नाक से नहीं, कान से सूंघी जाती है। जब यह कान के माध्यम से हृदय तक पहुंचती है तो अनेक जन्मों की वासना की दुर्गन्ध चली जाती है और चरण मकरन्द से चित्त सुवासित होने लगता है। सभी व्रजवासियों ने चौसर फेंक दी और सूरदास जी के चरणों में पड़ गए। सूरदास जी ने कहा–'भैया, हमारे पावन में परबे सो कहा मिलैगो, आचार्य चरणाश्रित ह्वै जाओ।' वे सबके सब आचार्य चरणाश्रित हो गए और नित्य प्रति मंगला के दर्शन का नियम कर लिया।

एक बार तानसेन ने अकबर के दरबार में एक पद गाया, वह पद सूरदास जी का था–

जसुदा बार बार यों भाखे।
है कोई ब्रज में हितू हमारो जो चलत गोपालहि राखे।

पद पूरा होने के बाद अकबर ने पूछा–'यशोदा बार बार क्यों बोलती है? पद का अर्थ बताओ।' बीरबल ने कहा–'यशोदा प्रत्येक ब्रजवासी के द्वार पे जा जा कर कह रही है–भैया, तू ही गोपाल को रोक ले, तू ही रोक ले।'

एक शायर थे–फैजी। उन्होंने कहा–'यशोदा रो रो कर यह कह रही है कि हमारे गोपाल को कोई रोक ले।

एक ज्योतिषी जी थे। उन्होंने कहा–'यशोदा हर दिन, हर पल यही कहती हैं कि कोई गोपाल को रोक ले।'

फिर रहीम जी की बारी आई। उन्होंने कहा–'यशोदा का रोम रोम कह रहा है, इसलिए 'बार–बार' का प्रयोग किया गया है।'

अकबर ने कहा–'आपका अर्थ हमें सबसे अच्छा लगा। लेकिन इसका क्या प्रमाण है कि आपका अर्थ सूरदास जी के भाव के बिलकुल अनुरूप है? इनके अर्थ में क्या कमी है?'

रहीम जी ने कहा–'जहांपनाह, कोई कमी नहीं है, लेकिन जो जैसा है, उसने वैसा अर्थ किया। तानसेन गवैया हैं। गवैये एक ही शब्द को बार बार भांति भांति से दुहराते हैं, इसलिए उन्होंने ये अर्थ किया कि यशोदा जी बार बार कहती हैं। बीरबल ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण घर घर जजमानी में घूमते हैं इसलिए उन्होंने वैसा अर्थ कया। शायर फैजी तो दर्द भरी गजल गाते हुए रोता ही रहता है। इसलिए इसने कह दिया–रो रो कर। लेकिन मैं यही समझता हूं कि यशोदा जी की वाणी ही नहीं, रोम रोम कह रहा है।'

अकबर ने कहा–'वाह! सूरदास जी की वाणी इतनी गंभीर है, एक पद के इतने अर्थ! बहुत ऊंचे कवि हैं।' तानसेन ने कहा–'जहांपनाह, केवल कवि नहीं, वे महान संत हैं। श्री कृष्ण के नित्य

सखा हैं और बहुत ऊंचे गवैया हैं। उन्हें सब राग-रागिनी सिद्ध हैं।' अकबर ने पूछा-'तुमसे भी अच्छा गाते हैं क्या?' तानसेन ने कहा-'जहांपनाह, इस गुलाम की गुस्ताखी माफ हो, मैं नाचीज एक मुल्क के बादशाह को गा कर रिझाता हूं और वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के शहंशाह श्री नाथ जी को रिझाते हैं, अंतर तो रहेगा ही।' अकबर ने कहा-'अच्छा! तब सूरदास जी को दरबार में बुलाया जाए।'

'यह असम्भव है, वे श्री नाथ जी की सेवा छोड़ कर नहीं आएंगे।'

तब सं० १६१३ में जब बादशाह मथुरा आया तो वह सूरदास जी को बुलाया। पहले तो उसने दूत भेजकर पुछवाया-'मैं स्वयं दर्शन करने पारासौली आ जाऊं?' सूरदास जी ने मना कर दिया। बादशाह लाव लश्कर के साथ आएगा तो ब्रजवासियों को तकलीफ होगी, उसके लोग जहां तहां गंदगी कर भूमि को अपवित्र करेंगे, इसलिए वे स्वयं ही मथुरा आ गए। अकबर ने बड़े आदर के साथ प्रणाम कर कहा-'आप कुछ सुनाइये।'

सूरदास जी ने सुनाया-मन रे कर माधव सों प्रीति।

अकबर बहुत प्रभावित हुआ। फिर उसको सूरदास जी की निष्ठा की परीक्षा करने के लिए कहा-'सूरदास जी, आप ठाकुर जी का यश तो गाते ही हैं, कुछ मेरा भी गाइये।' सूरदास जी ने कहा-'भैया, तू काहे को इतनो व्याकुल होय रह्यो है, संसार के सबै नाम रूप विनासी हैं, ठाकुर को ही नाम रहैगो, ठाकुर को ही रूप रहैगो, ठाकुर को ही यश रहैगो, ठाकुर की ही लीला रहैगी। तेरो यश गायबे सों मेरो कहा हित होय जायगो और तेरो कहा भलो होय जायगो?'

बादशाह बोला-'सूरदास जी हमें भी तो बादशाहत ठाकुर जी ने ही बख्शी है, इसलिए बड़े बड़े लोग हमारा यश गाकर पुरस्कार पाते हैं, तब आप भी कुछ गाइए।' उसके हठ को देखकर सूरदास जी ने तानपूरा उठाया-'मन में रह्यो नाहिन ठौर-भैया, तेरे घुसने की जगह मेरे मन में है ही नहीं। इसमें नंद नंदन समाए हैं, दूसरे को कैसे लाएं। जागते उठते चलते फिरते वही मूर्ति समाई रहती है, एक छन के लिए भी वह मधुर मूरति इधर उधर नहीं जाती।'

अकबर ने प्रणाम किया-'बाबा अपराध क्षमा करें। आप सच्चे संत हैं, लेकिन मेरी जिज्ञासा है। आपने जो पद गाया उसकी अंतिम पंक्ति है-

स्याम गात सरोज लोचन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन प्यास।।

किंतु आप तो जन्मांध हैं, फिर आपकी आंखों में दर्शन की प्यास कैसे है?'

'भैया बादशाह, आंख वारे तो जगत में बहुत हैं, पर दरसन की प्यास किन आंखन को है?'

तब तक तानसेन ने कहा–'हुजूर, आप यह शंका न करें कि इन्हें दर्शन नहीं होता। जिन नेत्रों से दर्शन होता है उनका इन नेत्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे दिव्य नेत्र होते हैं जिनसे सूरदास जी को दर्शन हो रहा है।'

'यदि दर्शन हो ही रहा है तो फिर क्यों कहते हैं–मरत लोचन प्यास?'

तानसेन ने कहा–'इसका समाधान तो सूरदास जी ही कर सकते हैं।'

सूरदास जी ने कहा- 'भैया, ये तो हृदय की प्यास है, इसे तो वे ही जान सकै जिनको अनुभव होय है। इनको दरसन करते हुए भी आंखन की प्यास बुझे नहीं, और भी तीव्र होती चली जाय है। याको अनुभव तुम नहीं कर सकौ।'

एक बार भाईजी–हनुमान प्रसाद जी पोद्दार के पास एक सज्जन पहुंचे और कहा–'हमने प्रमाणिक संतों से सुना है कि आपको भगवान के दर्शन होते हैं, इस विषय में हमें कुछ बताइए।'

भाईजी ने कहा–'भैया, मैं इतना ही कहूंगा कि भगवत् दर्शन के लिए कलियुग से उत्तम कोई काल नहीं है। पर मुझे हुआ कि नहीं इस विषय में मेरा मौन रहना ही उचित है। यदि कहूं कि दर्शन हुआ है तो कदाचित् आपके मन में यह आ जाए कि कलियुग में दर्शन कहां! अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए कह रहे हैं। या तुम किसी और से कहोगे तो वह सोच सकता है कि अपना प्रचार कर रहे हैं। यदि मैं कहूं कि नहीं हुआ तो आप सोचेंगे कि इतने संतों ने झूठ थोड़े ही कहा है, हुआ तो जरूर होगा, दैन्य के कारण ऐसा कह रहे हैं। अतः ऐसे प्रश्न के लिए मौन ही उचित है, लेकिन इतना जरूर कहूंगा कि ईमानदारी से भजन में लग जाओ, जिस दिन सच्ची व्याकुलता जग जाएगी, पल भर में दर्शन हो जाएंगे।

गूंगे को गुड़ स्वाद–अकबर ने प्रणाम कर कुछ जागीर देनी चाही पर सूरदास जी ने कहा–'भैया, ठाकुर जी को नाम ही हमारो धन है, हम यह जागीर ले कर क्या करें? अब तू जल्दी से मोय वापस भिजाय दे, ठाकुर जी के उत्थापन को समय होवे वारो है।'

गुसाँई श्री विट्ठल नाथ जी सूरदास जी को अपने निकट ज्यादा से ज्यादा रखने का प्रयत्न करते क्योंकि उनके रहने से लीला सुख प्राप्त होता रहता। एक बार उन्होंने कहा–'सूरदास जी, हमारे साथ गोकुल चलो।'

'जैसी आचार्य की आज्ञा।'

इस प्रकार कुछ दिन गोकुल निवास किया और नवनीत प्रिय लालजी को सुंदर सुंदर पद सुनाते। एक दिन गुसाँई जी ने संस्कृत में एक पद लिखा और उसके लिए कौन सा राग–ताल आदि उपयुक्त होगा, यह भी सूरदास जी को बताया। सूरदास जी को एक बार सुनने से ही कंठस्थ हो गया और ऐसा सुंदर गाया कि सब आश्चर्य चकित हो गए। तब आचार्य चरण ने दूसरा पद प्रस्तुत

करने की आज्ञा दी तो आपने उसी का अनुवाद करके उसी समय पुनः गा दिया। उनकी विलक्षण प्रतिभा से गुसाँई जी ने गदगद् हो कर हृदय से लगाते हुए कहा–'आप तो या पुष्टि मार्ग के जहाज हो।' वह पद था –

प्रेंख पर्यंक श्री गिरिधरन सौहै।
प्रेम आनन्द भरी गोपिका कर धरैं देत झोंटा तहाँ काम मोहै।।

एक दिन की बात है, गोसाँई जी ने कहा–'सूरदास जी, आज नवनीतप्रिय लाल जी की शोभा कैसी बनी है, याको कछु वर्णन करके सुनाओ।' वे चाहते थे कि उनकी महिमा सब ब्रजवासी भी समझ जाएँ। सूरदास जी ने गाया–

कहं लौं बरनौ सुंदरताई।
खेलत कुंवर कनक आंगन में नैन निरखि छवि पाई।

इस पद में घुटनों के बल चलते हुए, आंगन में खेलते हुए, थोड़ा तुतला कर बोलते हुए सबको पूर्ण आनन्द देते हुए ठाकुर जी की सुंदरता का अनुपम वर्णन था। सब आश्चर्य में पड़ गए।

कुछ दिन पश्चात् गुसाँई जी के ज्येष्ठ पुत्र गिरधर लाल जी से गोस्वामी बालकों ने आग्रह किया–'सूरदास जी ठाकुर जी के श्रृंगार और पोशाकों का अलग अलग वर्णन करते हैं, कोई बता देता होगा कि आज ऐसा श्रृंगार हो रहा है और वे रचना कर देते हैं। उनकी परीक्षा लेनी चाहिए।'

गिरधर लाल जी ने कहा–'सूरदास जी को दिव्य दृष्टि प्राप्त है, उनकी परीक्षा लेने से अपराध बनेगा।'

'हम अपराध की दृष्टि से परीक्षा लेनो नहीं चाहें, हम तो उनसे एक प्रेम विनोद करिबो चाहै हैं। या एक नई लीला होयगी जासों रस बढ़ैगो और सूरदास जी की महिमा उजागर होयगी।'

बाल हठ के कारण उस दिन गिरधर लाल जी ने नवनीतप्रिय लाल जी का अद्भुत श्रृंगार किया। गर्मी बहुत थी, केवल छोटे छोटे मोतियों से ही सारा श्रृंगार किया, श्री अंग में चंदन का लेप कर दिया, लंगोटी भी नहीं पहराई। जैसे ही परदा हटाया गया, कहा–'सूरदास जी, शोभा को वर्णन करो।' सूरदास जी बोले–

देखे री हरि नंगम नंगा।
जल सुत (मोती) भूषण अंग बिराजत, बसन हीन छबि उठत तरंगा।

भाव था–सच तो यह है कि ठाकुर जी के अनावृत्त अंगों की छवि देखने की सामर्थ्य किसी में नहीं है, अतः उस सुंदरता को तनिक छिपाने के लिए वस्त्र आभूषण धारण कराए जाते हैं, उनकी शोभा बढ़ाने के लिए नहीं। उनके अंग पर पहुंच कर तो वस्त्र आभूषण शोभायमान होने लग जाते हैं।

पद के अंत में कहा–किलकत दधि सुत (माखन) मुख लै मन भरि, सूर हंसत ब्रज जुवतिन संगा।

ब्रज बालक बोले–'सूरदास बाबा, आज आपने ये कैसो विलक्षण पद गाया है?'

'जै जै, आचार्य चरण जैसो सिंगार करेंगे, यह बिना मोल को सेवक वैसो ही तो गावेगो।'

सूरदास जी ठाकुर जी के भोग प्रसाद का तो किनका मात्र लेते। संत के लिए मधुकरी भिक्षा अत्यंत पुनीत मानी गई है। जैसे भंवरा अनेक पुष्पों से थोड़ा थोड़ा रस लेता है, पुष्प को कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार कई घरों से थोड़ा थोड़ा टुकड़ा ले ले और पा ले। एक टुकड़ा भिक्षा देने के पीछे देने वाले की कोई कामना नहीं रहती, रहे तो भी उस टुकड़े पर उसका प्रभाव नहीं होता। कामना युक्त अन्न पेट में जाए तो भजन में बाधा पहुंचती है। पूरी रोटी नहीं टुकड़ा टुकड़ा रोटी या चुटकी चुटकी आटा ले आवे और कंडे में बाटी सेक कर खा लेवे। सूरदास जी ऐसी ही भिक्षा लेते।

परासौली ग्राम का ही एक बालक गोपाल सूरदास जी की सेवा करता। वह भोला भाला किंतु स्वभाव से कुछ चंचल था। एक दिन उसने भिक्षा सूरदास जी के सामने धर दी, फिर वह गोबर उठाने चला गया और वहां कुछ अन्य बालकों से बातचीत में लग गया। गोपाल जल पात्र रखना भूल गया था। इधर सूरदास जी भिक्षा पाने लगे तो कंठ में ग्रास अटक गया। उनके तो प्राण संकट में पड़ गए, वे हाथ से टटोल टटोल कर जल पात्र ढूंढ रहे थे। श्री नाथ जी से नहीं रहा गया, वे उसी क्षण अपनी झारी ले कर वहां प्रकट हो गए। सूरदास जी ने झारी से जल पी लिया।

उधर गोपाल को होश आया कि आज जल का लोटा भरना भूल गया, दौड़ कर आया तो सोने की झारी देखी। उसने सूरदास जी के चरणों में पड़ कर क्षमा मांगी और पूछा–'यह झारी कहां से आई?'

सूरदास जी रो पड़े–'मैंने जल के लिए गोपाल–गोपाल पुकारा तो श्री नाथजी को मंदिर से कष्ट उठाना पड़ा।'

अब चर्चा हुई कि यह झारी तो ठाकुर जी के योग्य नहीं रही तो स्वयं ठाकुर जी ने कहा–'अरे सखान में तो सब चलै है। हमारे तो ये खूब योग्य है।'

उस समय सूरदास जी ने गाया–तुम बिन कौन भक्त प्रतिपालै।

श्रीनाथ जी का मंदिर तो गिरराज गोवर्धन के ऊपर है, नीचे गोपालपुर नाम का गांव बसा हुआ है जिसे अब जतीपुरा कहते हैं।

जतीपुरा में एक लोभी बनिये की दुकान थी। वह चेला किसी का नहीं था पर सुंदर वल्लभकुली तिलक लगाता, बहुत सी तुलसी माला पहनता। वह किसी से पूछ लेता कि आज कैसा सिंगार है। फिर यात्रियों से कहता–भैया, जय श्री कृष्ण, जय श्री कृष्ण। फिर वर्णन करने लग जाता–अरे आज तो ऐसी शोभा भई है ... । लोग उसे उत्तम वैष्णव भक्त समझते और उसी के यहां से सामान खरीदते। एक दिन उसने सूरदास जी से कहा–'सूरदास जी, सभी वैष्णव हमें जै श्री कृष्ण कहें, तुम तो सूधे सूधे चले जाओ, हमारी दुकान से न कछु लेओ न काऊ को लेने की प्रेरणा देओ। अरे हमऊ तो वैष्णव हैं। वैष्णव की वस्तु तो परम पवित्र होय है।'

सूरदास जी बोले–'भैया, हम तो बहुत बच रहे तोते। तेरे जैसे कृपण का छाया न पड़ जाए यासो हम जल्दी यहां ते चले जायं, पर आज तैने अपनी ओर ते हमकूं छेड्यो है। मैं तो तेरी सबरी पोल पट्टी जानूं। मोहे कोरो आंधरो समझ रह्यो है? मैं आंधरो नाय हूं, मैं अच्छी प्रकार से जानूं कि तू महा कृपण, महा विमुख है। केवल ठगबे के ताईं तैनें तिलक लगाय राख्यो है। ज्यादा लै और कम तोलै। तैनें ऐसी कृपणता सों बहुत धन अर्जित कियो है।'

वह घबरा कर बोला–'बाबा, आप तो सबै जानो, हमारी तो रोजी रोटी मारी जाएगी।' सूरदास जी बोले–'चल दर्शन कर और गुसाँई जी के चरणाश्रित हो। कृपणता से बहुत धन बटोर लिया है।'

'मैं जरूर दर्शन करूंगा, हमारी पोल पट्टी मत खोलना।'

'नहीं खोलेंगे। वैष्णव हो जाओ और रोज दर्शन किया करो।'

'अच्छा, हमें याद दिला देना, कब दर्शन खुल रहे हैं।'

'ठीक है।'

सूरदास जी तो पहले ही पहुंच जाते थे पद गाने। जब दर्शन खुले तो पर्वत से नीचे उतर कर आए–'चल भगत, मंगला के दर्शन खुल रहे हैं।'

'अरे बाबा, ये तो बोहनी को समय है। पूरी दुकान किसके सहारे छोड़ूं, कोई ग्राहक सबेरे सबेरे लौट जायगो तो हमारी बोहनी बिगड़ जायगी।'

सूरदास जी फिर श्रृंगार दर्शन के समय आए तो कहा–'सुबह ते बैठ्यो हूं, अभी तक बोहनी नाय भई। याही समय तो ज्यादा लोग आवें।'

फिर राजभोग के समय कहा–'तमाम गैया डोल रही हैं, हम दुकान पे अकेले हैं।' उत्थापन के समय कहा–'गैयान के आयबे को समय है गयो, हमरो अनाज खा जाएंगी।'

संत तो पीछे पड़कर कल्याण करते हैं। सूरदास जी ने मंगला से शयन तक हर बार पहले और दूसरे दिन चेताया। तीसरे दिन भी जब वह नहीं गया तब सूरदास जी बोले–'अब हमें नाय जानो ऊपर। अब तो हम यहीं बैठे हैं। अब तो हम कविता बना बना कर तेरी कृपणता का प्रचार करेंगे। तेरी दुकान को एक कण लेवे योग्य नहीं है। तेरी सबरी रोजी रोटी बंद करवाय दूंगो। तू तीन दिन से झूठ बोल रह्यो है। अरे, तू श्री जी की ध्वजा के नीचे निवास करै है, झूठ बोल बोलके इतनो धन अर्जित कियो है और एकऊ गौ-ब्राह्मण की सेवा नाय कीनी।' अब तो वह डर गया और सूरदास जी के साथ चल पड़ा। सूरदास जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और मंदिर में ले जा कर गद्‌गद् कंठ से कहा–'हे श्री नाथ जी, ये आपकी ध्वजा के नीचे निवास करै। या पै कृपा करियो।'

उनके इतना कहते ही श्री नाथ जी ने अपनी कोटि कोटि कंदर्प दलन मूर्ति प्रकट कर दी और उसे साक्षात् दर्शन हो गया। वह मूर्छित हो कर गिर गया।

फिर उसने सूरदास जी के चरण पकड़ लिए-'बाबा मैं साठ वर्ष का हो गया था और अब तक श्री नाथ जी के दर्शन नहीं किए थे। अब तो हम आपकी ही शरण में हैं।'

सूरदास जी ने कहा–'भैया, हम तेरो कल्याण कहा कर सकैं। कल्याण तो श्री नाथ जी और आचार्य चरण करेंगे।' उसने गुसाँई जी के चरण पकड़े तो वे हंस कर बोले–'सूरदास जी साठ बरस के बूढ़े बरद (बैल) को नाथ के लाए हो।'

सूदरास जी बोले–'जै जै, आप तो अनाथन के नाथ हो, या ही सो याकी नाथ आपके हाथ में है।'

फिर उसे गोविंद कुंड में स्नान कराया, उर्ध्वपुंड तिलक और तुलसी माला धारण कराई और अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा दी। इसके बाद तो उसने श्री नाथजी की प्रातः काल से शयन तक की सुंदर सेवा सामग्री प्रस्तुत की और सभी वैष्णवों को प्रसाद भी पवाया। अब वह दुकान पर तो बैठता पर समय से सभी दर्शन करता। अब सूरदास जी आते जाते उसकी दुकान पर कुछ देर बैठने भी लगे। एक दिन उसने कहा-बाबा, हमारे कल्याण के लिए कुछ सुनाओ। तब आपने साठ तुकों का पद (क्योंकि वह साठ साल का था) तुरत रचना करके सुनाया। यह बड़ा सुंदर उपदेशात्मक पद है-

कृष्ण सुमरि तन पावन कीजै ज्यों लौं जग सुपना ज्यो जीजै।
अवधि उसांस गिनत सब तेरे सो बीतत भई आवत नेरे।
जो ये सुपने माहि बिचारै कबहुं न जन्म विषय लगि हारै।
कही बिबेक बीज जो बोवै कबहु न जठर अगनि में सोवै।
बार बार तोकूं समझावें जो छिन जाय बहुरि नहीं आवे।।

बहुत लम्बा पद है। यह सुना तो उसे पूर्ण वैराग्य हो गया। बोला–'बाबा, अब आप आज्ञा करो।'

'तुमने अब तक जो कुछ संग्रह किया वह दुख का मूल है। भजन करने और वैष्णव होने के बाद भी वृत्ति धन में चली गई तो दुर्गति हो जाएगी। जो कुछ है, उसे ठाकुर जी को अर्पित करो।'

तब उसने साठ हजार रुपए श्री नाथ जी की सेवा में समर्पित किया (यह अकबर के जमाने की बात है, उस समय यह बहुत बड़ी रकम थी) और फिर तो वह ऐसा अनन्य सेवक हो गया कि श्री नाथ जी उसके साथ खेलने लगे। उसे लीलाओं का दर्शन और अनुभव होने लगा।

सूर साहित्य में जैसी कृष्ण लीला प्रकाशित हुई है, वैसी ही सुंदर राम लीला भी है। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं।

इसके लिए उनका साहित्य देखना चाहिए। सूर रामायण में राम जी की लीलाओं का सुंदर वर्णन है। एक पद देखिए–

करतल शोभित बान धनुहियां।
खेलत फिरत कनकमय आंगन पहिरे लाल पनहियां।

सूरदास जी के मन में विचार आया कि मैं सवा लाख पदों की रचना कर ठाकुर जी को समर्पित करूं। उनके लगभग एक लाख पद संग्रहीत हो गए। सूरदास जी को ऐसा अनुभव होने लगा कि प्यारे सखा श्री कृष्ण अपनी नित्य लीला में बुला रहे हैं। उन्होंने निश्चय किया कि मैं पद पूर्ण करके ही जाऊंगा। उधर ठाकुर जी उनके लिए अधीर हो रहे थे। वे सूरदास जी के सामने प्रकट हो गए–'सूरदास जी, आपके सवा लाख पद का संकल्प पूर्ण हो गया है।' सूरदास जी ने कहा–'जै जै, अभी तक तो एक लाख पद की ही रचना की है।' ठाकुर जी बोले–"बाकी मैंने पूरे कर दिए हैं। उन पदों में 'सूर श्याम' की छाप है। अब आप शीघ्र मेरी नित्य लीला में सम्मिलित हो जाओ।' सूरदास जी बड़े प्रसन्न हुए।

सूरदास जी मंगला आरती के पहले मंदिर पहुंचते और राजभोग के बाद वापस परासौली आते। उस दिन मंगला आरती और फिर शृंगार आरती में पद गायन कर लौट पड़े। विट्ठलनाथ जी भयभीत हो गए–लगता है अब लीला संवरण की तैयारी है, राजभोग नित्य निकुंज में ही करने वाले हैं। उन्होंने शृंगार आरती के बाद उस दिन तुरत राजभोग धरा कर ठाकुर जी को शयन करा कर दौड़े। सूरदास जी के शरीर में ज्वर था और अपनी कुटी में रजरानी में लेटे थे। गुसाँई जी के साथ

और सब भी आ गए। श्री चतुर्भुज दास जी ने कहा–'हे सूरदास जी महाराज, परम दयालु गुसाँई जी महाराज पधारे हैं।' सूरदास जी ने हाथ जोड़ कर वंदन किया और कहा–'या अधम को या ही अवस्था में प्रणाम स्वीकार करो।' उनके शरीर में उठने की सामर्थ्य नहीं थी। गुसाँई जी के नेत्र बहने लगे, बड़े प्रेम से मस्तक पर कर कंज पधराया और उनके मस्तक को अपनी गोद में ले लिया–'कहो सूरदास जी, कैसे हो?'

'जै जै, जाको मस्तक आपकी गोद में होय वाको क्या पूछनो कि कैसे हो। मोय तो आश्रय मिल गयो।'

वहां आयु में सबसे छोटे थे चतुर्भुज दास जी। उन्हें सूरदास जी का बहुत स्नेह प्राप्त था। उन्होंने धीरे धीरे चरण सहलाते हुए पूछा–'बाबा, या समय आपकी चित्तवृत्ति कहां है?'

तब सूरदास जी ने यह पद सुनाया-खंजन नयन रूप रस माते। तात्पर्य यह था कि चरणों से ऊपर उठ कर अब ठाकुर जी के नैनों में दृष्टि अटकी हुई है।

फिर चतुर्भुज दास जी ने कहा–'इतने दिनान मैं संकोचवश पूछ नहीं पायो एक बात।'

'संकोच कैसा, पूछो'

'आपमें आचार्य निष्ठा भरपूर है, लेकिन आपने इतने पदों की रचना करते हुए भी कहीं भी स्पष्ट रूप से आचार्य सुयश नहीं गाया है। उनकी किसी लीला या चरित्र का गायन क्यों नहीं किया?'

'भैया चतुर्भुज दास, मैंने आचार्य और श्री कृष्ण दो नहीं समझे। मैंने तो सवा लाख पदन के माध्यम सों आचार्य सुयश ही गायो है। फिर भी आप चाहते हो तो दोनों के सुयश को एक साथ वर्णन करूं ....

भरोसों दृढ़ इन चरणन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग माहिं अंधेरो।।
साधन और नांय या कलि में जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोल को चेरो।।

इसमें दोनों का यश है। एक अर्थ है श्रयते हरि इति श्री-जो श्री कृष्ण का आश्रय ले अथवा श्रयते हरिणां इति श्री अर्थात् श्री कृष्ण अपना तन मन न्यौछावर करके जिसके अधीन रहते हों-वह श्री।

अत: श्री वल्लभ का अर्थ है श्री जी के प्रिय अर्थात् श्री कृष्ण। और वल्लभाचार्य जी आचार्य भी हैं, उनकी नख चन्द्र छटा के बिना सब जग माहिं अंधेरो-आचार्य प्रपत्ति के अतिरिक्त

कलियुग में दूसरा कोई साधन नहीं है। जिस जीव के कल्याण का कोई साधन न बचा हो, वह आचार्य के चरणों का आश्रय ले ले तो श्रृंखला संबन्ध से ठाकुर जी से जुड़ जाता है। मैं तो आचार्य का बिना मोल का सेवक हूं।

सूरदास जी ने गागर में सागर भर दिया। एक ही पद में आचार्य महिमा और श्री कृष्ण महिमा एक साथ घटित होती है।

इस पद को गाने के बाद सूरदास जी की विह्वलता और अधिक बढ़ गई, नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी, ताप और अधिक बढ़ गया। वे व्याकुलता से कांपने लगे।

सब विचार करने लगे कि इन्होंने जीवन भर इतना यश गाया, शरीर तो सुमन-माल की भांति छूट जाना चाहिए था, मृत्यु के समय इतना अपार कष्ट क्यों हो रहा है? सब रोने लगे। फिर चतुर्भुज दास जी ने ही कहा-'बाबा, आपने जीवन भर सुयश गायो, गिरिराज जी की तरहटी आपको मिली हुई है, आचार्य के अंक में आपको मस्तक विराजमान है, श्री जी का चरणोदक है, व्रज रज शरीर में लगाई जा रही है, फिर आपको कौन सी बात को कष्ट है?'

सूरदास जी की रोते रोते हिचकी बंध गई-'जा ब्रज रज के मैं सदा सन्मुख रह्यो वा ही को पीठ दिखाय के जाय रहयो हूं, या ही बात को कष्ट है। अब शरीर में सामर्थ्य नहीं है कि मैं उलट के रज के सन्मुख है जाऊं।'

तब चतुर्भुज दास जी और गुसाँई जी ने सूरदास जी को उलट कर साष्टांग की मुद्रा में जैसे ही लिटाया, प्रसन्न हो कर सूरदास जी ने व्रज रज का आलिंगन करते हुए नित्य निकुंज में निवास प्राप्त किया।

यह थी सूरदास जी की व्रज रज निष्ठा। जो व्रज रज को जान नहीं सका वह व्रज रस को क्या जानेगा। जो व्रज रस को जानेगा वही नित्य निकुंज महल के रस को जान सकता है। सूरदास जी के जैसा चरित्र तो सूरदास जी का ही है।

हमारे पूज्य गुरुदेव ने सूरदास जी के अभिनन्दन में लिखा है-

है बारबार हे सूर तिहारो वंदन अरु अभिनन्दन।
सो कृपा करो भव फंद फारि हम फंसे प्रेम के फंदन।।

भक्ति ज्ञान वैराग्य युवा हैं तव वाणी में तीनों।
कृष्ण कीर्ति की कथा गाय तैने कलि को धक्का दीनो।
व्रज मलयाचल यश वर्धन हित प्रकट भयो तू चंदन।।

शांत दास्य वात्सल्य सख्य अरु महा मधुर रस गायो।
सुनि सुनि श्री गुरु हरि हरिजन मन तोहि में अरुझायो।
मन मोहक पद गान तान धुनि नथे नाथ नंद नन्दन।।

गोकुल ग्वाल ग्वालिनी यमुना गैया अरु बल भैया।
राधा कृष्ण कुंज गिरि गह्वर नन्द यशोदा मैया।
सबके भाव प्रभाव भाषि के मेटि दिए भव फंदन।।

नामी नाम धाम अरु धामी श्री ब्रज रज की महिमा।
भक्त भक्ति भगवन्त गुरु की गाई गुरु की गरिमा।
ताके परसत सरसत कवि हिय होत सरस सुस्पन्दन।।

भवाटवी में भूलो भटको पथिक जीव घबरायो।
तेरे गाए गीत श्रवण कर निज पथ पर चलि आयो।
कविवर तेरे स्वर को सुनि के थिर होवे मन स्यन्दन।।

भारी विविध अवतार यथा श्री हरि ने विपति हरी है।
भए भक्त अधीन प्रकट सो करुणा कथा करी है।
बरनै तुमने दुष्ट निकन्दन रघुनन्दन अरु यदुनन्दन।।

पारासौली चन्द्र सरोवर गोवर्धन मन भायो।
वेणु गोपी औ भ्रमर गीत संग वीणा वाद्य बजायो।
राच्यो नाच्यो नगधर नटवर सुनि सुनि करुणा क्रन्दन।।
है बारबार हे सूर तिहारो वंदन अरु अभिनन्दन।

****